प्रकृति (अव्यक्त)

सांख्य के अनुसार 'प्रकृति' सबसे महत्वपूर्ण तत्त्व है। यही संसार का मूल कारण है। प्रकृति त्रिगुणात्मिका है। सत्त्वरजस्तमोरूप तीनों गुणों की साम्यावस्था का नाम 'प्रकृति' है। प्रकृति अविवेकी, विषय, सामान्य, अचेतन तथा प्रसवधर्मीत्व है-

त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं तद्विपरीतस्तथा पुमान् च।।

इसके अतिरिक्त प्रकृति सूक्ष्म होने के कारण 'अव्यक्त एवं विभु' है। इन्द्रियों के द्वारा उसका प्रत्यक्ष नहीं होता। सब तत्वों में प्रधान होने के कारण इसे 'प्रधान' भी कहते हैं। वह अव्यक्त है और उसके परिणाम व्यक्त है। वह जड़-चेतन, समस्त जगत् का उपादान कारण है।

कार्य से कारण का अनुमान किया जाता है। यह महदादि त्रिगुणात्मक है, अतः उससे कारण प्रकृति के त्रिगुणात्मक होने का अनुमान लगाया जा सकता है। जगत् में कार्य सदा त्रिगुणात्मक देखे जाते हैं। कारण और कार्य में एकरूपता देखी जाती है। महदादि सुखदुःखमोहात्मक एवं अविवेक्यादि धर्म वाले होते हैं, अतः प्रकृति भी सुखदुःखमोहात्मक एवं अविवेक्यादि धर्म वाली होगी। कार्य के कारण गुणात्मक होने से 'अव्यक्त' की सिद्धि होती है।

भेदानां परिमाणात्समन्वयाच्छक्तितः प्रवृत्तेश्च।
कारणकार्यविभागादविभाद्वैश्यरूपस्य।
कारणमस्त्वव्यक्तम्...

1. **भेदानां परिमाणात्**- महदादि कार्यों के परिमित (सीमित) होने के कारण उनका एक व्यापक हेतु अव्यक्त प्रधान ही है। घट आदि कार्यों का कारण मृत्पिण्ड (पृथ्वी) अपरिमित है। इसी प्रकार महदादि 23 तत्त्व परिमित है और उनका कारण अव्यक्त प्रधान अपरिमित है।

2. **समन्वयात्**- भिन्न-भिन्न पदार्थों की किसी धर्म में समानरूपता को समन्वय कहते हैं। यथा-महदादि के परस्पर भिन्न होने पर भी सुखदुःखमोहात्मक रूप से समानता है। अतः इनके कारण का भी सुखदुःखमोहात्मक धर्म वाला स्वभाव हैं जोकि त्रिगुणात्मिका प्रकृति ही है।

3. **शक्तितः प्रवृत्तेः**- जिस कारण में जिस कार्य के आविर्भाव करने की सामर्थ्य होती है, उसी कारण से वह कार्य प्रकट होता है यथा- घट मृत्तिका से ही प्रकट होता है, तन्तुओं से नहीं। अतः जिससे महदादि कार्यों का आविर्भाव होता है, वहीं 'अव्यक्त' है। वही मूल प्रकृति भी है।

4. **कारणकार्यविभागात्**- कारण से कार्य के आविर्भूत होने से भी प्रकृति की सिद्धि होती है। जिस प्रकार कछुए के शरीर में उसके अंग लीन हो जाते हैं और फिर उससे ही वह बाहर निकल आते हैं इसी प्रकार घट, पट आदि अपने-अपने कारणों से आविर्भूत हो जाते हैं, और प्रलय आदि में अपने कारणों में लीन हो जाते हैं। इसी प्रकार महदादि कार्य भी अपने-अपने कारणों से आविर्भूत और पुनः उसमें तिरोहित हो जाते हैं। वह सभी का मूल कारण प्रकृति है।

5. **अविभागाद्वैश्वरूपस्य**- सम्पूर्ण घटादि महत्तत्वान्तकार्य प्रलयकाल में लीन होकर अव्यक्त रूप से विद्यमान रहते हैं वही प्रकृति (अव्यक्त) है। उसका तो किसी में लय और किसी से आविर्भाव भी नहीं होता है। अतः वही परमाव्यक्त है।

इस प्रकार अनुमान प्रमाण के द्वारा 'अव्यक्त' की सिद्धि होती है। जगत् की समस्त वस्तुएँ कृतक, अनित्य, अव्यापक, परतंत्र, सावयव और व्यक्त है, अतः जगत् का आदिकारण अकृतक, नित्य, व्यापक, स्वतंत्र, निरवयव और अव्यक्त होना चाहिए। वही प्रकृति है-

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकाश्रितं लिङ्गम्।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्।।

पुरुष

प्रकृति एवं पुरुष सांख्य दर्शन के दो प्रमुख तत्त्व हैं जिसमें पुरुष प्रकृति और महत् आदि से भिन्न और विपरीत है, वह अत्रिगुणात्मक, विवेकी, अविषय (द्रष्टा) असामान्य, चेतन तथा परिणामी है। प्रकृति जड़ है, अतः जड़ प्रकृति बिना किसी चेतन की सहायता के किसी भी कार्य में प्रवृत्त नहीं हो सकती, अतः चेतन उसका सहायक है। चेतनता पुरुष का धर्म है। प्रकृति के साथ उसका साहचर्य 'पुष्करपलाशवन्निर्लिप्त' है। वह न किसी की प्रकृति है और न किसी की अविकृति, अतः वह नित्य कूटस्थ है। वह साक्षी एवं द्रष्टा है। सुख एवं दुःख से उदासीन है। पुरुष निष्क्रिय, उदासीन एवं प्रकृति के बन्धनों से मुक्त है। किंतु त्रिगुणात्मक बुद्धि के सुख-दुःखों को अपना समझकर नाना भोगों को भोगता रहता है–

तस्मान्न बध्यतेऽद्धा, न मुच्यते, नापि संसरति कश्चित्।
संसरति, बध्यते, मुच्यते च नानाऽऽश्रया प्रकृतिः।।

अनुमान के द्वारा ही पुरुष की सिद्धि होती है। सांख्य पुरुष की सिद्धि के लिए निम्न कारिका प्रस्तुत करता है–

संघातपदार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च।।

1. **संघातपदार्थत्वात्**– प्रकृति आदि सभी तत्त्व जड़ पदार्थ है। ये सभी परस्पर संयुक्त हो निरन्तर क्रियान्वित रहते हैं। ये त्रिगुणात्मक एवं सुख-दुःख एवं मोह के संयोग से निर्मित होने के कारण संघात कहे जाते हैं। संघात सर्वदा दूसरे के उपभोग के लिए होता है। जैसे–शय्या, आसन आदि पदार्थ अपने से भिन्न दूसरे किसी के उपभोग के लिए है उसी प्रकार प्रकृति से उत्पन्न यह जगत् किसी दूसरे पदार्थ के भोग के लिए है और वह पुरुष के अतिरिक्त और कोई नहीं है।

2. **त्रिगुणादिविपर्ययात्**– संसार की समस्त वस्तुएँ अविवेकी, अचेतन, तथा त्रिगुणात्मक है किन्तु त्रिगुण में तादात्म्य भी है। इन गुणों के न्यूनाधिक्य से किसी तत्त्व में इनकी शून्यता-अभाव की सम्भावना होती है। और वह तत्त्व है पुरुष। त्रिगुणत्व, अविवेकिता, विषमता, सामान्यता, अचेतनता तथा प्रसवधर्मिता– ये सभी गुण के हैं। इस संघात का उपभोक्ता अवश्य त्रिगुणादि रहित होगा। संघात त्रिगुणात्मक होने से उपभोग्य है तथा त्रिगुणातीत होने से पुरुष इनका उपभोक्ता है।

अधिष्ठानात्– इस सृष्टि में जितने सुख-दुःख-मोहात्मक जड़ पदार्थ है, उनका अधिष्ठाता उनसे भिन्न कोई दूसरा तत्त्व होता है। अतः अचेतन पदार्थ किसी चेतन से अधिष्ठित होकर क्रियाशील होता है। यथा- अचेतन रथ स्वयं क्रियाशील नहीं होता अपितु चेतन सारथी के द्वारा गतिशील होता है। इसी प्रकार बुद्धि आदि सभी प्राकृत तत्त्व सुख-दुःख-मोहात्मक हैं इनका भी कोई न कोई अधिष्ठाता अवश्य है और वह तत्त्व पुरुष के अतिरिक्त अन्य नहीं है।

भोक्तृभावात्– भोग्य और भोक्ता भाव के द्वारा यह सिद्ध होता है कि कोई भोक्ता भी है। प्रकृति और इसके कार्य त्रिगुणात्मक होने से दृश्य तथा सुख-दुःख-मोहात्मक होने से भोग्य है अतः स्वयं इनका उपभोग नहीं कर सकते। संसार के सम्पूर्ण दृश्य एवं भोग्य पदार्थ अपने से पृथक् किसी दृष्टा एवं भोक्ता की अपेक्षा रखते हैं। अतः इनका द्रष्टा एवं भोक्ता अत्रिगुणात्मकादि गुणों से युक्त इनसे भिन्न तत्त्व है। वह पुरुष ही है।

कैवल्यार्थ प्रवृत्तेः– यह पुरुष की सिद्ध का पांचवा हेतु है। प्रकृति और महदादि सुख-दुःख-मोहात्मक होने से कैवल्य की प्राप्ति नहीं कर सकते। अपितु सुख-दुःख-मोहादि के स्वभाव से रहित वह पुरुष ही है जो कैवल्य के लिए प्रयत्नशील रहता है। लोक में भी मनुष्य मोक्ष के लिए प्रयत्नशील देखे जाते हैं। अतः त्रिगुणात्मक प्रकृति की अपेक्षा त्रिगुणातीत पुरुष ही कैवल्य की प्राप्ति कर सकता है।

पुरुष का नानात्व

जन्म-मरणकरणानां प्रतिनियमाद् युगपत्प्रवृत्तेश्च।

प्रत्येक मनुष्य के जन्म, मरण एवं इन्द्रियां पृथक्-पृथक् होती हैं। सभी मनुष्यों की किसी कार्य में एक-साथ प्रवृत्ति न होने से तथा पुरुषों में सत्त्व, रज तथा तम – तीनों गुणों के भेद से उसमें एकत्व की सिद्धि नहीं होती अपितु पुरुष बहुत्व का प्रतिपादन होता है। अतएव पुरुष अनेक हैं।

जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमात्– सभी शरीरों में एक ही पुरुष की स्थिति उचित नहीं है। यदि सभी शरीरों में एक ही पुरुष होता तो एक पुरुष के जन्म लेने पर सभी पुरुषों का जन्म होता, तथा एक पुरुष की मृत्यु से सभी की मृत्यु हो जाती तथा एक पुरुष की इन्द्रिय के विकृत होने पर सभी पुरुषों की इन्द्रियों में विकृति आ जाती यथा– किसी एक के बधिर होने पर सभी पुरुष वधिर तथा पागल या उदासीन होने पर सभी मनुष्य पागल या उदासीन हो जाने चाहिए। परन्तु ऐसा होता नहीं है। अतः यही युक्तियुक्त है कि प्रत्येक शरीर का अधिष्ठाता पुरुष पृथक्-पृथक् है।

अयुगपत्प्रवृत्तेः– सभी प्राणियों की किसी कार्य में एक साथ प्रवृत्ति नहीं होती है। यदि सभी शरीरों में एक ही पुरुष अधिष्ठित होता तो एक के उठने, बैठने, खाने, पीने पर सभी पुरुषों की उठने, बैठने, खाने पीने की क्रियाएँ सम्पादित होती। परन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं होता। कोई पुरुष धर्म में लीन है तो कोई अधर्म में, कोई पढ़ने में तो कोई शयन में लीन होता है अतः प्रत्येक शरीर में पुरुष पृथक्-पृथक् है।

त्रैगुण्यविपर्ययात्– पुरुषों में परस्पर भेद होने का कारण गुणों का न्यूनाधिक्य है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में पृथक्-पृथक् विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती है। कोई पुरुष सत्त्व-प्रधान, कोई राजस-प्रधान तथा किसी में तमोगुण की प्रधानता देखी जा सकती है। किसी पुरुष के पास सुखाधिक्य है तो किसी के पास दुःख की बहुलता। कोई पुरुष शान्त स्वभाव से युक्त है तो कोई अत्यधिक क्रोधी है। अतः सिद्ध होता है कि प्रत्येक शरीर का अधिष्ठाता भिन्न पुरुष है।